Chap-5

पंचम् अध्याय

कला संचेतना

सजीव बिम्ब और सार्थक प्रतीक संयोजना :

मनुष्य के जीवन में बिम्ब-विधान या कल्पना का बड़ा महत्व है । प्रस्तुत परिवेश के संवेदनों और प्रत्यक्ष के अतिरिक्त उसके मानस में अतीत की, तथा कभी अस्तित्वहीन वस्तुओं एवम् अघटित घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएँ भी विद्यमान रहती हैं । 'बिम्ब' शब्द इसी मानस-प्रतिमा का पर्याय है। इन बिम्बों या प्रतिमाओं का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है । 'उद्भव के आधार पर बिम्ब दो प्रकार के माने जाते हैं - स्मृति जन्य और स्वरचित । स्मृति जन्य बिम्ब पूर्वगामी अनुभूति का पुनरुत्पाद मात्र होता है । जैसे अपने किसी मित्र की याद आने पर उसके रूप, गुण, स्वभाव, स्वर आदि की दृष्टि और शब्द-बिम्ब हमारे मन-मस्तिष्क में आ जाते हैं । स्वरचित बिम्ब या प्रतिमाएँ अपेक्षाकृत नूतन और मौलिक होती हैं । यद्यपि उनके निर्मायिक घटक हमारे अनुभव में अलग-अलग आ चुके होते हैं । जैसे 'मेघदूत' स्वयं कवि 'कालिदास' की स्वरचित नूतन प्रतिमा है । वह हमारे प्रत्यक्ष अनुभव में न कभी आया है, न आ सकेगा । हाँ हमने 'मेघ' और 'दूत' को अलग-अलग अवश्य देखा है । यह नूतन प्रतिमा (बिम्ब) निर्माण या बिम्ब-विधान समस्त कला, काव्य, संगीत और नवनिर्माण का मूल आधार है । भाषा और चिन्तन के मूल उपादान बिम्ब ही हैं । व्यक्तियों की बिम्ब-विधान सम्बन्धी क्षमता में बड़ा अन्तर होता है । दृष्टि-सम्बन्धी बिम्ब-विधान या कल्पना की क्षमता प्रायः सभी व्यक्तियों में मिलती है'' ।[१]

ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर बिम्ब या प्रतिमाएँ कई प्रकार की होती हैं, जैसे - दृष्टि, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श आदि । दृष्टि सम्बन्धी बिम्व-विधान के बाद शाब्दिक बिम्ब-विधान की क्षमता का स्थान आता है । गन्ध, रस, स्पर्श सम्बन्धी कल्पना की क्षमता अपेक्षतया कम लोगों में विद्यमान होती है।[२]

साहित्य-रचना में बिम्ब-विधान का स्वरूप बहुत कुछ कवि या लेखक के अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करता है । रचाव की शैली से ही व्यक्ति के विषय में अनुमान नहीं किया जा सकता, उसके बिम्ब-विधान से भी उसके व्यक्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता है । वाल्मीकि, कालिदास और अश्वघोष के बिम्ब-विधान उत्कृष्ट होते हुए भी विशिष्ट प्रकार के हैं । कबीर, सूर और तुलसीदास की रचनाओं में भी यही बात मिलती है । 'प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा के बिम्ब-विधान उनके व्यक्तित्व के अनुसार अपने-अपने ढंग के हैं ।'

छायावादी काव्य और छायावादोत्तर काव्य की तरह नवगीत ने भी बिम्ब-विधान को सहजता से अपनाया, किन्तु जीवन की विविधता का चित्रांकन करने वाले नवगीतकारों ने अपने बिम्बों का चयन जीवन के वैविध्य से किया है । एक ओर यदि गार्हस्थिक जीवन के विभिन्न पक्षों का हृदयस्पर्शी उद्घाटन है, तो दूसरी ओर प्राचीन संस्कृति से आधुनिक बोध को अभिव्यंजित करने का सहज प्रयास भी देखा जा सकता है -

"काँस, कुछ करील
कुछ बबूल हो गए !
हम सब,
इतिहासों की भूल हो गये !
कल के मिजराब
आज बघनखे हुए,
मुरझाये फूल
ताख पर रखे हुए,
रंग-गंध से
नाते दूर के हुए,
धुंधलाये बिम्ब
नखत धूल हो गये !
मौसम के माथे
यह क्या व्यथा बदी,
शीशे में कांप रही
बीसवीं सदी,
बालू में डूब गई
भीतरी नदी;
उड़ते ध्वज
धंसते मस्तूल हो गये !"[३]

बिम्बों के आगमन से गीतकार का 'निजि अस्तित्व' स्पष्ट न होकर 'संकेत' बन जाता है । इसी लिए गीत में बिम्बों का स्थान नगण्य है । फिर भी अनायास ही नवगीत में बिम्बों के आ जाने से अद्भुत सौन्दर्य दिखाई पड़ने लगता है । काव्य-शिल्प की मौलिकता का आधार सामान्य रूप से

भाषा-प्रयोग में माना गया है । भाषा की सार्थकता उपयुक्त बिम्ब-विधान की सृष्टि में निहित है । 'बिम्ब' कल्पना की सृष्टि है । लेकिन काव्य के सन्दर्भ में अयथार्थ का पर्याय नहीं है । कल्पना की मूल अवधारणा 'संवेदन' की प्रक्रिया के माध्यम से समझी जा सकती है । हमें इस जगत का अभिज्ञान इन्द्रियों द्वारा होता है । इस अभिज्ञान की सामान्यतः दो स्थितियां प्राप्त होती हैं - प्रत्यक्ष अभिज्ञान की स्थिति तथा परोक्ष अभिज्ञान की स्थिति ।

प्रत्यक्ष अनुभव वास्तविक जगत के प्रति इन्द्रियों की सीधी प्रतिक्रिया है, और परोक्ष अनुभव उसकी मानसिक प्रतीति । इसी मानसिक प्रतीति को कल्पना कहा जा सकता है । किन्तु यह 'काल्पनिकता', 'वास्तविकता' का विलोमार्थी हरगिज नहीं है । बल्कि 'कल्पना', 'वास्तविक' की अनुपस्थिति में भी उसे उपस्थित करके देखने की प्रक्रिया है । अतएव 'कल्पना' यथार्थ के समान न होकर भी उससे अवश्य संलग्न रहती है ।'कला' के सम्बन्ध में ध्यातव्य है कि, जब 'वास्तव', 'कल्पना' के द्वारा पुनः सृजित की जाती है, तब उसमें अन्य अनुभवों के मिश्रण अथवा सम्बद्ध अनुभवों में किसी के त्याग का अवकाश रहता है, क्योंकि, कला-सृष्टि का अभिप्रेत सौन्दर्य-सृष्टि है । चयन की इस सुविधा के फलस्वरूप कलाकार कल्पना के द्वारा नवीनतम, मौलिक एवम् रम्यतम रूपों की सृष्टि में समर्थ होता है । लेकिन इस सृष्टि का रूपात्मक होना अनिवार्य है, क्योंकि इसमें इन्द्रिय-ग्राह्यता का गुण अपेक्षित है । कल्पना के इस इन्द्रिय-संवेद्य व्यापार की अनिवार्य परिणति बिम्ब रचना में होती है । बिम्ब और कल्पना के इस उत्पाद्य-उत्पादक सम्बन्ध को शिप्ले, लावेल, वेले, काष्ट, लिविस तथा मैक्सिम गोर्की आदि दार्शनिकों और समीक्षकों ने स्वीकार किया है । इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुए डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं - 'सर्जना के क्षणों में अनुभूति के नाना रूप कवि की कल्पना पर आरूढ़ हो, जब शब्द अर्थ के माध्यम से व्यक्त होने का उपक्रम करते हैं तो इस सक्रियता के फलस्वरूप अनेक मानस-छवियां 'आकार' ग्रहण करने लगती हैं । इन्हें ही काव्य-बिम्ब कहते हैं ।' नवगीत के काव्यशिल्प का निर्माण इसी प्रातिभ कल्पना के द्वारा हुआ है जिसमें शब्दार्थ अपनी अभिव्यक्ति में काव्य के बिम्बात्मक रूप ग्रहण करते हैं ।

डॉ. शम्भुनाथ सिंह, 'बिम्ब' को नवगीत के शिल्प की सर्वप्रमुख विशिष्टता मानते हैं - "नवगीत पूर्णतः बिम्बधर्मी काव्य है..... । किन्तु उसके बिम्ब पूर्ववर्ती कविता के समान अलंकृत, अनुकृत, रूढ़ अथवा काल्पनिक नहीं है । उसमें या तो ऐसे प्रातिभ बिम्बों का प्रयोग हुआ है जो पाश्यन्तीवाक् के स्तर से अभिव्यक्त होने के कारण सर्वथा नवीन, अछूते और अकल्पनीय हैं, या उसमें अधिकतर यथार्थ जगत के अनुद्घाटित आयामों के अप्रयुक्त बिम्ब प्रयुक्त हुए हैं । जैसे वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्र के जीवन-बिम्ब, महानगरों के त्रासद और नाटकीय बिम्ब, ठेठ ग्रामीण अंचलों एवं वन-पर्वतों के आदिम तथा मिथकीय बिम्ब, भोगी हुई जीवनानुभूतियों के संश्लिष्ट बिम्ब, उस चेतना के अन्धकार में निहित वासनाओं के छद्म-रूपों के खंडित एवम्-प्रतीकात्मक बिम्ब तथा राजनीतिक-सामाजिक विसंगतियों और विडम्बनाओं के सांकेतिक एवम् छन्दात्मक बिम्ब । इन बिम्बों की पहचान ही नवगीत की सही पहचान है ।"[४]

'नवगीत' न केवल समृद्ध बिम्बों का काव्य है, बल्कि प्रत्येक नवगीतकार के बिम्बों की मौलिक विशेषता है जो उसके काव्य-शिल्प की मौलिकता का आधार है, इसी कारण नवगीत-विधा की सर्जना

में वह यान्त्रिक समानता नहीं है, जो उसकी अन्य सामयिक काव्य-धाराओं में है । शम्भुनाथ सिंह के गीतों में बिम्ब-विधान की दो परिपाटियाँ हैं । उनके प्रारम्भिक आंचलिक गीतों में बिम्बों का निर्माण प्राकृतिक उपादानों एवम् लोक-अभिप्रायों से हुआ है, जबकि उनके आधुनिक युग-बोध को व्यंजित करने वाले गीतों में यथार्थ परिवेश को बिम्ब-निर्माण के लिए प्रयुक्त किया गया है । इनमें आधुनिक जीवन के वैज्ञानिक सन्दर्भों का पर्याप्त प्रयोग है । श्रव्य एवम् दृश्य, दोनों संवेदनों को मिश्रित रूप में प्रस्तुत करने वाला एक बिम्ब है -

''सरसराती उड़ानें इधर से उधर
थरथराती हुई हर गली हर डगर
छोड़कर घर सभी हो गये लापता
सामने है पड़ा एक सूना नगर ।''[५]

गीतकार रामदरश मिश्र के बिम्बों की रचना का प्राथमिक आधार 'प्रकृति' है । प्राकृतिक उपादानों के द्वारा उन्होंने ठोस, संश्लिष्ट एवम् कलात्मक बिम्बों की रचना की है । उसमें वर्ण-वैशिष्ट्य और स्पष्ट-वैशिष्ट्य विशेष रूप से दर्शनीय हैं । साथ ही उन्होंने अपने बिम्बों को एक गतिशील प्राणवत्ता देने के लिए मानवीकरण का प्रयोग किया है -

'बहने लगी नदी ज्यों
अपने ही भीतर खोयी थी
जाग उठी फिर प्यास कि जैसे
मरी नहीं थी, सोयी थी
बजने लगा अनन्त स्वरों में
फिर बसन्त पतझार पर ।
लिपियों से भर गया पृष्ठ-सा
यह लम्बा सन्नाटा
पल-पल चुभने लगा हवा को
ज्यों गुलाब का कांटा
सुबह-सुबह चुपचाप रख गया
कौन फूल था द्वार पर ।'[६]

रवीन्द्र भ्रमर का बिम्ब-विधान प्रकृति के समृद्ध सौन्दर्य को इन्द्रिय-संवेद्य बनाकर प्रस्तुत करने में बहुत सफल रहा है । उनके प्रथम संकलन में जहां विविधता और व्यापकता अधिक है, वहां 'सोन मछरी मन बसी' में एक विशिष्ट सन्दर्भ को नयी भाव-भंगिमाओं में प्रस्तुत किया गया है । इस संग्रह के गीतों में प्रतीकात्मकता अधिक है । साथ ही इनमें शृंगारात्मक सन्दर्भ भी अधिक हैं । यथा -

''नीली-सी चिड़िया
उसके नन्हें-नन्हें पंख
कहां बांधूं अपना पैगाम

मेरी सुबह कूकती पिहकती है ।''[७]

बिम्बों की दृष्टि से वीरेन्द्र मिश्र का काव्य भी पर्याप्त समृद्ध है । साथ ही उसमें एक क्रमिक विकास भी देखने को मिलता है । सातवें दशक में उनके द्वारा लिखे गीतों में प्रयुक्त बिम्ब जहां अधिक समृद्ध हैं, वही आठवें दशक के उनके गीतों में व्यंग्य को धार देने के लिए प्रयुक्त वस्तुपरकता के तत्व ज्यादा हैं । 'अविराम चल मधुवंती' में उन्होंने अनेक प्रकृति-बिम्बों का निर्माण किया । अंतरीक्ष, पृथ्वी, पर्वत, सागर आदि को मूर्तिमान करने वाले कई भव्य एवम् विराट बिम्बों की जो सृष्टि इन्होंने की, वे उनके गीतों की अलग पहचान हैं । सावन के पदयात्री का यह बिम्ब इसी प्रवृत्ति का परिचायक है -

''अभी-अभी आया है सावन का पद यात्री
अभी चला जायेगा
और धनुष-द्वारे की, नील-क्षितिज देहरी पर फूल चढ़ा जाएगा
ज्वार उठेगा फिर भी
और कहेगा फिर भी
जाना क्या बरखा को ओ मांझी भाई रे ।''[८]

नवगीत को जितने मौलिक बिम्ब देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने दिये हैं, उतने शायद थोड़े ही कवियों ने दिये होंगे । इनके बिम्बों में एक सघन बुनावट है । 'इन्द्र' जी ने सामयिक सन्दर्भों को विशिष्ट बिम्बों में बांधकर एक काल-निरपेक्ष व्यापकता दी है । सांस्कृतिक चेतना की सम्पन्नता को व्यंजित करने वाले अनेक बिम्ब इनके गीतों में उपलब्ध हैं । प्रकृति का प्रयोग इनके बिम्ब-विधान में एक विशिष्ट शैली में हुआ है -

'कल्पतरु
समझे जिन्हें हम
वे खजूरी हो गये
व्यर्थ गूंगी प्रतीक्षा ने
एक फल की
आस की
पत्तियाँ सूखी बिछीं थीं
राह में मधुमास की
बाँस, काँस, बबूल
वन में
जी-हुजूरी बो गये ।'[९]

मौलिक बिम्ब-सर्जना की दृष्टि से माहेश्वर तिवारी का भी महत्वपूर्ण स्थान है । उनके बिम्बों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि, जन सामान्य के जीवन की विसंगति, यातना, व्यथा एवं विवशता को उद्घाटित करना उनके गीतों का प्रमुख प्रतिपाद्य रहा है । ऐसा ही सार्थक बिम्ब उनके

निम्न नवगीत-पंक्तियों में देखा जा सकता है -

'कोई आदिम जंगल
शायद मुझमें जिन्दा है ।
दिन मेमना सरीखा लगता
फँसा भेड़ियों में
दूब बनी गोखरू
चुभ रही नर्म एड़ियों में
कोई भूरा बादल
शायद मुझमें ज़िन्दा है ।
भीतर से हिंसक आवाजें
रह-रह आती हैं
बर्बरता के शिलालेख
हमसे पढ़वाती हैं
सदियों का कोलाहल
शायद मुझमें जिन्दा है ।'[१०]

अनूप अशेष के बिम्बों में एक आंचलिक विशिष्टता, लोक मन की अभिव्यक्ति विद्यमान है । उनका बिम्ब-विधान आदिम गंधों से निर्मित है । स्वभावतः उसमें प्रकृतिपरक सन्दर्भों का आधिक्य है। एक विशिष्ट परिवेश के यथार्थ एवम् उसकी पीड़ा को अभिव्यक्ति देने में उनका बिम्ब-विधान बहुत समर्थ है । कई बार उन्होंने खंड-बिम्बों के माध्यम से एक समग्र बिम्ब का निर्माण भी किया है । यथा

'बांस का टूटा हुआ जंगला
फटी भीती
बन्धु
हम यही रहते हैं ।
भूख का यह घर
कि जैसे पेट का भूगोल
माथे पर खिंचावों की लकीरें
जले चूल्हे की
पुरानी गंध,
मन को कहां चीरें,
धूप में तपता हुआ पिंजड़ा
दाने बिना तीतल
बन्धु
इनको हमी सहते हैं ।'[११]

अन्यान्य रागात्मक प्रसंगों को नवगीत में पर्याप्त सशक्त एवम् विशद् अभिव्यक्ति मिली है । स्वप्नशील होते मानव-मन के सन्दर्भ कभी भी पुराने नहीं पड़ते । ग्रामीण परिवेश की विविध महकों में मोहक बिम्बों के साथ घर के हारने और मुस्कान के टूटने को भी संजोता अनूप अशेष का निम्न गीत जीवन का एक समग्र प्रारूप प्रस्तुत करता है -

"एक महक सोंधी मिट्टी की
एक महक
बौछार
एक महक बांधे
गमछे में
कच्चे घर की हार
एक महक कच्ची रोटी की
एक महक खलिहान
एक महक पल्लू में खोंसी
टूटी-सी मुस्कान ।"[१२]

नवगीत के बिम्ब-विधान से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि, काव्य-भाषा के सौन्दर्य का आधार शब्दों का सार्थक एवम् समुचित प्रयोग ही है । यहां प्रायः साधारण अतिपरिचित भाषा का प्रयोग रागात्मक बिम्बों की सृष्टि के लिए किया गया है । भाषा की जिस सहजता का आग्रह 'बच्चन' आदि रचनाकारों ने किया था, उसे नवगीतकार ने अनुचित नहीं माना । परन्तु नवगीतकार के लिए सहजता का तात्पर्य सपाटबयानी नहीं है, बल्कि, वह सहज भाषा के माध्यम से विशिष्ट शिल्प का निर्माण करता है । निम्न नवगीत-पंक्तियों में भाषा की यह सहजता विशिष्ट बिम्ब-निर्माण में सार्थकता पा सकी है -

'कुछ हिलते रूमालों
कुछ भीगी पलकों के
धुंधलाते अक्सों को
याद में रचाये
हर खुलती खिड़की से
कतरा कर नज़रें हम-
गुज़र इन कूचों से
सहमे-सकुचाये
शायद ही लौटें अब
आपके शहर में ।'[१३]

नवगीत में ऐसे सार्थक प्रयोग अनगिनत हैं । 'यों तो एक ही समय में एक ही भाव-विचार पर अनेक कवि रचना करते हैं, किन्तु कहीं भाव-तादात्म्य की कमी दिखाई देती है, कहीं ऊबड़-खाबड़ शब्दों से विन्यस्त पदावली होती है, कहीं मुलम्मा छुटे शब्दों का प्रयोग होता है तो कहीं गीत का

शरीर पूरा करने के लिए काँच की आँखों और गत्ते के कानों को फिट कर दिया जाता है ।'[१४]

कोरी भावुकता से हटकर जब नवगीतकार यथार्थ की ठोस भूमि पर आ खड़ा होता है तो उसकी भाषा की चेतना ही बदल जाती है । युग-सत्यों से सम्पृक्त उसकी संवेदना स्वभावतः ठोस बिम्बात्मकता में ढल जाती है । अलंकृति-प्रधान अप्रस्तुत-सापेक्ष परोक्ष बिम्ब-विधान की अपेक्षा इसमें वस्तुपरक प्रत्यक्ष बिम्ब-रचना ही कवि की अनुभूति को वैयक्तिक धरातल से मुक्त कर एक व्यापक सन्दर्भ प्रदान करती है। यह बिम्ब-रचना अर्थ-सम्प्रेषण की पूर्णता के लिए प्रायः प्रतीक मूला भी होती है । इस तथ्य को हम एक उदाहरण से स्पष्ट करना चाहेंगे -

'इस सदन में, मैं अकेला ही दिया हूँ
मत बुझाओ-
जब मिलेगी रोशनी मुझसे मिलेगी ।
पाँव तो मेरे थकन ने छील डाले
अब विचारों के सहारे चल रहा हूँ
आँसुओं से जन्म दे-देकर हँसी को
एक मन्दिर के दिये-सा जल रहा हूँ
मैं जहाँ धर दूँ कदम, वह राजपथ है
मत मिटाओ-
पाँव मेरे देखकर दुनिया चलेगी ।'[१५]

इस प्रकार हम पाते हैं कि, ठोस वस्तुपरक बिम्बों से निर्मित होने वाले प्रतीक-सन्दर्भ एक ओर तो एक ही अनुभूति की दो अभिव्यक्तिगत स्थितियाँ देते हैं, दूसरी ओर कवि और समाज के सह-अनुभव को एक ही संश्लिष्ट अभिव्यक्ति का माध्यम भी प्रदान करते हैं । उपर्युक्त उदाहरण के आधार पर हमने जिस वस्तुपरक, बिम्बात्मक युगानुभूति व्यंजक शिल्प का विवेचन किया है, वह नवगीत की संवेदना की अभिव्यक्ति की प्रमुख विशिष्टता है ।

काव्य-भाषा को बिम्बों की समृद्धि प्रदान करने का महत् उत्तरदायित्व विशेषणों के प्रयोग पर है । छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त विशेषणों ने आधुनिक युग के अधिकांश आलोचकों का ध्यान खींचा था । पंत पर तो उनके अपव्यय का भी आरोप लगाया गया है । बिम्बों के सन्दर्भ में हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि नवगीत में विशेषणों का अपेक्षित एवम् अर्थ-प्रवाह प्रयोग हुआ है । इनके प्रयोग से भाषा की क्षमता बढ़ी है । किन्तु बिम्बों की अतिशयता नवगीत को नुकसान भी पहुंचा सकती है । इस सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध समीक्षक श्री विश्वनाथ प्रसाद नवगीतकारों को सजग करते हुए कहते हैं- ''नवगीत को केवल बिम्ब-धर्मी काव्य कहना, पाश्चात्य बिम्ब-वादियों की उसी बात को दुहराना है कि, हमेशा बिम्बों में ही अच्छी कविता होती है । यह अन्तर्विरोधिनी बात है कि एक ओर तो भारतीयता की पहचान की दुहाई दी जाय, दूसरी ओर नवगीत को केवल बिम्बों तक समेट कर भारतीय काव्य-मूल्यों से नाता तोड़ लिया जाय । रागात्मकता और व्यंजकता का नवगीत से गहरा सम्बन्ध है । नयी कविता के बिम्बों में वैविध्य अधिक है, और नवगीत के बिम्बों में कसावट के कारण संकेत अधिक

हैं । नयी कविता के बिम्ब संश्लिष्ट और विश्लिष्ट दोनों हैं । नवगीत के बिम्ब विश्लिष्ट अधिक हैं । नवगीत में-वैज्ञानिक और यथार्थपरक बिम्ब कम, लेकिन गाँवों, पर्वतों, जंगलों और नदियों के बिम्ब अधिक हैं । नवगीत के केन्द्र में जीवन का कोई राग या बोध होता है । अपने कथ्य को प्रभावशाली बनाने के लिए नवगीतकार बिम्बों का सहारा लेता है । नवगीतकार के लिए 'बिम्ब' साधन मात्र हैं।"[१६] वस्तुतः नवगीत के बिम्ब-विधान का व्यापक अध्ययन अपेक्षित है । इसके अन्तर्गत कई इतने मौलिक एवम् टटके प्रयोग नवगीतकारों ने किये हैं कि वे हठात् हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेते हैं ।

'प्रतीक' शब्द का प्रयोग उस दृश्य या गोचर (अथवा प्रस्तुत) वस्तु के लिए किया जाता है, जो किसी अदृश्य या अगोचर (अथवा अप्रस्तुत) विषय का प्रति-विधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है; अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु 'प्रतीक' है । अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतीक प्रतिविधान मूर्त, दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुत विषय द्वारा करता है । जैसे अदृश्य या अप्रस्तुत ईश्वर, देवता अथवा किसी व्यक्ति का प्रतिनिधित्व उसकी प्रतिमा या अन्य कोई वस्तु कर सकती है । साधारण तौर से कहा जा सकता है कि प्रतीकों के द्वारा किसी विषय का प्रतिविधान करना 'प्रतीकवाद' है । मनुष्य के सामाजिक और धार्मिक व्यवहार का अधिकांश प्रतीकात्मक होता है । मनोविश्लेषक, अवचेतन जीवन और स्वप्नों की व्याख्या करने में प्रतीकों का सहारा लेता है । साहित्य और कला के क्षेत्र में प्रतीकवाद एक विशिष्ट भावधारा का आन्दोलन और अभिव्यक्ति है । प्रतीकीकरण मनुष्य का सहज स्वभाव है । मनुष्य का समस्त जीवन प्रतीकों से परिपूर्ण है । वस्तुतः मनुष्य मूलतः प्रतीकों के माध्यम से ही सोचता है । अमूर्त चिन्तन अधिक विकसित स्तर का लक्षण है ।

प्रतीकों की दो मुख्य विशेषताएँ होती हैं । प्रतीक सदैव किसी-न-किसी मध्यस्थ प्रकार के व्यापार का प्रतिनिधि होता है। तात्पर्य यह है कि, सभी प्रतीकों में ऐसे अर्थ निहित होते हैं, जिनको केवल प्रत्यक्ष अनुभव के सन्दर्भ से नहीं जाना जा सकता । दूसरी यह कि प्रतीक शक्ति को घनीभूत कर देता है, प्रतीक की तुच्छता और उसके द्वारा निर्दिष्ट वास्तविक महत्व के परिमाण में कोई सम्बन्ध नहीं होता । प्रतीक के दो स्वरूप हैं - सन्दर्भीय तथा संघनित । सन्दर्भीय प्रतीकों के अन्तर्गत वाणी और लिपि से व्यक्त शब्द, राष्ट्रीय पताकाएँ, तारों के परिवहन में प्रयुक्त होने वाली संहिता, रासायनिक तत्वों के चिन्ह आदि हैं । सन्दर्भीय प्रतीक सहज ही संवेगात्मक महत्व और कर्मकाण्ड से युक्त हो जाते हैं । संघनित प्रतीकों के अन्तर्गत धार्मिक कृत्यों तथा अन्य मनोवैज्ञानिक विवशता-जन्य प्रक्रियाओं एवम आध्यात्मिक क्रिया कलापों में प्रयुक्त होने वाले प्रतीक सम्मिलित हैं । ऐसे प्रतीक प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति या व्यवहार के स्थानापन्नों के संघनित रूप होते हैं और चेतन या अचेतन संवेगात्मक तनावों के मुक्त प्रसरण में सहायता देते हैं । व्यावहारिक जीवन में इन दोनों प्रकार के प्रतीकों का मिश्रण मिलता है। साहित्य में प्रतीकों का उपयोग कई प्रकार से होता है ।

नयी कविता के साथ नवगीत में भी प्रतीकों का प्रयोग अनिवार्य रूप से होता रहा है किन्तु अपेक्षाकृत कम । नवगीत जन-सामान्य की ज़िन्दगी के करीब है । अजूबापन, अलौकिकता और रहस्यमयता उसके विषय नहीं हैं । अभिव्यक्ति के लिए वह अपने परिचित परिवेश से सामग्री चुनता है । आज के सम्पूर्ण परिवेश या वातावरण पर उसकी नजर है, इसलिए उसकी भाषा में बड़े सन्दर्भ उभरते हैं।

नवगीत का कलेवर छोटा होने के कारण उसकी भाषा बिम्बात्मक और प्रतीक बहुल हो गई है। किन्तु नवगीत-कवियों की रुझान भाषा को सहज-सरल बनाने की ओर ही नहीं, भाषा को अधिक-से-अधिक अर्थवान बनाने की ओर भी है। नवगीत कथ्य और शिल्प की नवीनता लेकर साहित्य में उदित हुआ है। यह नवीन कथ्य है - नवगीतकार की जटिल अनुभूति। इसकी अभिव्यंजना पारम्परिक रूढ़ शिल्प में न तो सम्भव थी और न ही वरेण्य। इसलिए नवगीतकार ने बिम्ब, प्रतीक, उपमान, अलंकार, छन्द, लय आदि सभी उपकरणों में एक नवीनता लाने का प्रयत्न किया।

नवगीत का चरित्र मुख्यतः ग्राम्यांचलिक परिवेशधारी है, जिसमें मुख्यतः गाँव तथा आदिवासियों जैसे जन-साधारण के जीवन को भारतीय अथवा देशी प्रतीकों के माध्यम से चिन्हित और अभिव्यक्त करने की लालसा अधिक दिखाई देती है। देवेन्द्र कुमार, नईम, ओम प्रभाकर, गुलाब सिंह, माहेश्वर तिवारी, अनूप अशेष, दिनेश सिंह, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', यश मालवीय, सोमठाकुर, शांति सुमन आदि ने एक ओर जहां लोकजीवन के यथार्थ को सूक्ष्मतम प्रतीकों के माध्यम से सूक्ष्मतम और सघनतम अभिव्यक्ति दी है, वहीं दूसरी ओर इन्होंने गाँव और शहर का विभेद किये बिना जीवन, समाज और समय के सभी पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयत्न भी किया है। इन गीतकारों में रूढ़ियों, विडम्बनाओं, संत्रासों, यातनाओं आदि के प्रति गम्भीर विक्षोभ दिखाई पड़ता है। इनके अतिरिक्त शिव बहादुर सिंह 'भदौरिया', बुद्धिनाथ मिश्र, योगेन्द्र दत्त शर्मा, विनोद निगम, ओम प्रभाकर, कुमार रवीन्द्र, रवीन्द्र भ्रमर, उमाशंकर तिवारी, कुंअर बेचैन, राजेन्द्र गौतम, कैलाश गौतम, किसन सरोज, सुरेश, अखिलेश कुमार सिंह, रामचन्द्र चन्द्रभूषण, नीलम श्रीवास्तव, जगदीश श्रीवास्तव, विष्णु विराट, सत्यनारायण, अरविन्द सोरल, महेन्द्र नेह, वीरेन्द्र आस्तिक, रमेश रंजक, विद्यानन्दन राजीव, उदयभानु हंस, अमरनाथ श्रीवास्तव आदि गीतकारों ने समकालीन यथार्थ की व्यापक पड़ताल की है और प्रतीकों का स्वाभाविक प्रयोग कर कथ्य को स्पष्ट करने के भरसक प्रयत्न भी किये हैं -

"एक तुम्हारा होना
क्या से क्या कर देता है।
बेजुबान छत-दीवारों को
घर कर देता है।
खाली शब्दों में आता है
ऐसा अर्थ पिरोना,
गीत बन गया-सा लगता है
आँगन कोना-कोना,
एक तुम्हारा होना
सपनों को स्वर देता है।"[१७]

प्रतिनिधि नवगीतकारों - शम्भुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, जगदीश गुप्त, उमाकान्त मालवीय, राजेन्द्र प्रसाद सिंह आदि ने भी अपनी रचनाओं में बिम्बों के साथ-साथ स्वस्थ एवम् स्वाभाविक प्रतीकों को अपनाकर नयी स्फूर्ति, ताजगी और नूतन शक्ति का संचार किया था। इस सन्दर्भ में डॉ. शम्भुनाथ सिंह के एक नवगीत की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

"माथे के ऊपर बहती
रांगे की धारा-सी शाम ।
गुजरेगा एक और दिन
घंटे-दो घंटे के बाद,
रह जायेगा केवल पास
एक कसैला तीखा स्वाद,
सहलायेगी दुखता सिर
यादों के यादों की याद ।
यह भूखा-प्यासा बादल
टेरेगा नदियों के नाम ।...
गुंथी हुई छायाएँ मौन
थककर सोयीं चारो ओर,
शीशें के बन्द घरों में
कुहरे-सा घुमड़ रहा शोर,
जीवन की ऐंठी डोरी
सुलगे जिसके दोनों छोर ।
अन्धकार का गुच्छा एक
आँखों में उगता गुमनाम ।"[१८]

इस गीत की भाषा यों तो प्रतीक-प्रधान है ही, किन्तु गीत-वस्तु के साथ गहरी संयोजना इसे जन-साधारण की भाषा के रूप में निखारती और प्रगाढ़ करती है । इस गीत की भाषा की अपेक्षा आज के अधिकांश नवगीतों की भाषिक संरचना अभिजात्य प्रतीत होती है । लय-सुर की रक्षा करने के बावजूद अधिकांश नवगीतों की संरचना कुछ ज्यादा ही बौद्धिक लगती है । शीलेन्द्र सिंह, यश मालवीय और सुरेश के नवगीतों की बुनावट कुछ अलग ढंग की है जो सहज ही आम-जन को छू लेती है । शीलेन्द्र सिंह के बोध गम्य ठोस और मूर्त प्रतीक उनके कथ्य को सम्प्रेषित करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होते हैं । उनके नवगीतों में ऐसे प्रतीकों की भरमार है -

"खुली है खिड़की
दिशायें बन्द हैं
इस कदर
अन्धी हवाएं गर्म हैं ।
झुकते-झुकते
एक टहनी झुक गई
चलते-चलते
एक लड़की रुक गई
भीड़ ने देखा, कहा -

यह फूल है, वह फूल है
इस कदर
अन्धी हवायें गर्म हैं ।
चल रहा आकाश
चलते बादलों के साथ
छत मुंडेरों पर टिके हैं
हाथ पर रख हाथ
भीड़ ने देखा, कहा-
यह चांदनी, वह चांदनी
इस कदर
अन्धी हवायें गर्म हैं ।"[१९]

ऐसे ही प्रतीकों का सार्थक प्रयोग डॉ. विष्णु विराट के नवगीतों में स्वभावतः देखा जा सकता है -

'आप बस्ती में रहेंगे
आदमी बन
छोड़िये बेकार की बातें ।
ज्यों ढला सूरज
कि केंचुल छोड़ती - सी,
भूत-सी काली भयावह फैलती हैं,
हाल ये, आत्मीय-सी परछाइयों का है ।
जंगली फल
पेड़ से टूटा
शिला-दर-शिला होता
जा गिरा विकराल मुंह में
ये चलन अनजान अन्धी खाइयों का है ।
कल तलक
गुलजार ये होगा चमन,
छोड़िये बेकार की बातें ।"[२०]

यहां कवि की उक्ति-संरचना में एक विशिष्टता यह दिखायी देती है कि वह समानान्तर और समानार्थक प्रतीकों के संग सीधी-सरल भाषा में अपनी बात को इस खूबी के साथ कह ले जाता है कि वह सीधी और इकहरी मात्रा भी एक चमत्कारिक काव्योक्ति बन जाती है ।

उदयभानु 'हंस' की रचनाशीलता सम्प्रेषण के आग्रह से अत्यधिक प्रभावित है । इसलिए ये अमूर्त भाव-बिम्बों की बजाय ठोस मूर्त प्रतीकों का अधिक सहारा लेते हैं । और अन्ततः लोकोक्तियों और

मुहावरों द्वारा अपने भावों-विचारों की अभिव्यक्ति को तीक्ष्ण करते हैं, और अपने विक्षोभ को ज्यादातर व्यंग्य-वाणी में व्यक्त करते हैं । ऐसे व्यंग्य उनके अनेक नवगीतों में तल्खी के साथ उभरे हैं -

"आज कुँवारी कलियों की मुस्कान पर,
कुछ बदसूरत भँवरे हैं मँडरा रहे ।
देख चाँदनी के नंगे सौन्दर्य को,
वृद्ध सागरों के दिल हैं ललचा रहे ।
हर सूरज ने कितनी किरण बिखेरी है,
किन्तु अभी तक़ जग की रात अँधेरी है ।
जो अन्धी आँखों में ज्योति उभार दे
मैं ऐसा काजल बन जाना चाहता ।"[२१]

अनुभव कितना ही अन्तर्मुखी हो, जब गहन संवेदनात्मक बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से वस्तुपरकता प्राप्त कर लेता है, तब वह अपना रहता ही नहीं, वह समष्टिगत अभिव्यंजना का रूप ले लेता है । नवगीतकार ने अपने छोटे-छोटे सुख-दुःखों को प्राकृतिक प्रतीकों की धारा में उछालकर इतना विराट बना दिया है कि वैयक्तिकता की परिधि उन्हें बाँध पाने में नितान्त असमर्थ सिद्ध हुई है -

"समन्दर में कहाँ जाकर नहाऊँ
खड़ी तट पर नदी यह सोचती है !
गया द्वापर हजारों वर्ष बीते
अभी तक हैं हमारे हाथ रीते
अभी भी सामने चौसर बिछी है
हमीं हारे, हमेशा 'और' जीते
कहाँ जा लाज मैं अपनी बचाऊँ
अभी तक द्रौपदी यह सोचती है !...
न लोरी है, न परियों की कहानी
न बचपन है, न पहले-सी जवानी
बुढ़ापा और बूढ़ा हो गया है
अकेली हो गई है ज़िन्दगानी
हँसी को होठ पर कैसे बिठाऊँ
सिसकती त्रासदी यह सोचती है ।"[२२]

हमारी दृष्टि में नवगीत काव्य की यह भी एक महत उपलब्धि है । नवगीतकार जब अपने तरल विषाद् को, सुकून देने वाले सन्दर्भों की अनुपस्थिति को, दिगन्त मुखरित उल्लास के अभाव को अभिव्यक्त करने लगता है तो पूरा सन्दर्भ ही मुखर हो जाता है । नवगीत कवि सत्यनारायण के नवगीत की ये पंक्तियाँ देखें -

"सभाध्यक्ष हँस रहा

सभासद कोरस गाते हैं !
    जय-जयकारों का
    अनहद है
    जलते जंगल में ।
    कौन विलाप सुनेगा
    घर का
    इस कोलाहल में
पंजों से मुंह दबा
हमारी चीख दबाते हैं ।
    चन्दन को
    अपने में घेरे
    साँप मचलते हैं ।
    अश्वमेघ के
    घोड़े, बैठे
    झाग उगलते हैं ।
'आप चक्रवर्ती हैं राजन'
वे समझाते हैं ।"[२३]

कवि ने यहाँ युगानुभूति एवम् स्वानुभूति के मध्य की पार्थक्य रेखाओं को मिटाकर गीत के शिल्प को प्रतीकों के सहारे एक विशेष उत्कृष्टता प्रदान की है । इस कारण व्यंग्य भी तीक्ष्ण एवं सुन्दर बन पड़ा है ।

इस प्रकार हम पाते हैं कि ठोस वस्तुपरक बिम्ब और उन बिम्बों से निर्मित होने वाले प्रतीक-सन्दर्भ एक ओर तो एक ही अनुभूति की दो अभिव्यक्तिगत स्थितियाँ देते हैं, दूसरी ओर कवि और समाज के सह-अनुभवों को एक ही संश्लिष्ट अभिव्यक्ति का माध्यम प्रदान करते हैं ।

भाषा :

कविता में नवीन प्रवृत्तियों के उद्गम के चिह्न सर्वप्रथम उसकी 'भाषा' में परिलक्षित हुआ करते हैं क्योंकि, काव्य-भाषा का अपना एक विशिष्ट संस्कार होता है । जिस तरह व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान उसके संस्कारो से होती है, वैसे ही कवि एवम् कविता का व्यक्तित्व उसकी भाषा से पहचाना जाता है । साधारणतः 'काव्य-भाषा' एक अमूर्त धारणा है । स्थूल रूप में, भाषा का तात्पर्य 'शब्द-प्रयोग' से है किन्तु 'शब्द' निरपेक्ष रूप में भाषा की कोई पहचान बनाने में असमर्थ होते हैं, जबकि उनकी प्रयुक्ति-शैली भाषा के वास्तविक चरित्र को उद्घाटित करने में समर्थ होती है । हिन्दी-गीत में छायावाद ने भाषा का एक मानक स्थापित किया था और युग सन्दर्भों में अप्रासंगिक हो जाने तथा कुछ अन्य त्रुटियों के उभरने के कारण छायावदोत्तर काव्य में भाषा का एक दूसरा मानक स्थापित किया गया । बच्चन, नरेन्द्र, अंचल, दिनकर आदि ने हिन्दी गीत-भाषा में जो परिवर्तन किया, वहां उनसे

एक चूक भी हुई । उन्होंने छायावादी मुहावरे को बदलते हुए भाषा को जीवन के समीप लाकर बोलचाल का रूप तो दिया किन्तु काव्य-भाषा के लिए जो इन्द्रिय-संवेद्य रूपात्मक बिम्बात्मक 'डिक्शन' अपेक्षित है, उसे ये रचनाकार अधिक अर्जित नहीं कर पाये और उनकी परम्परा में आनेवाले गीतकारों में यह तत्व ओझल भी हो गया । शब्द-प्रयोग के माध्यम से उत्पन्न होने वाली ऊर्जा-सम्पन्नता लुप्त होती चली गई । इस दिशा में 'नवगीत' ने काव्य-भाषा में वह परिवर्तन किया जिसकी अपेक्षा अधिकांश रचनाकारों एवं पाठकों को थी । उसने काव्य-भाषा को कुहासे से निकाल कर एक स्पष्ट बिम्बात्मक भूमिका प्रदान की । नवगीत की सबसे बड़ी भाषिक विशिष्टता यह है कि, उसने एक ओर भाषा के सौन्दर्यपरक गुणों में अभिवृद्धि की है और दूसरी ओर उसने अभिव्यक्ति की सक्षमता का पूर्णतया निर्वाह भी किया है। नवगीतकार ने शब्द के समुचित प्रयोग पर बल दिया है । नवगीत ने मर्यादाओं को तोड़ते हुए भी शब्दों के शील की रक्षा के साथ-साथ उसका नूतन संस्कार भी किया है, जिसके आधार पर नवगीतकार ने एक स्वस्थ मर्यादित सम्बन्ध काव्य-भाषा के साथ बनाया है । जहां तक शब्द-चयन का मामला है, उसने जीवन के हर क्षेत्र से शब्दों को ग्रहण किया है । विषयानुकूल शब्द-चयन की प्रवृत्ति में परिवर्तन आया है । यदि हम 'मेंहदी और महावर' और 'सुबह रक्त पलाश की' अथवा 'सोन मछरी मन बसी' और 'झुलसा है छायानट धूप में' की भाषा का शब्द-चयन के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करें तो पाते हैं कि, नवगीतकार ने केवल पारम्परिक गीत की भाषा को ही नहीं बदला है, अपितु उसने स्वयं अपने मुहावरे एवम् सांचे को अपर्याप्त पाकर बारम्बार तोड़ा है और नवीन सांचों का निर्माण किया है । काव्य-भाषा की यह मौलिकता एवम् जीवन्तता नवगीत के शिल्प की ताजगी का आधार है । इसके अतिरिक्त शब्द-चयन के पीछे कवियों की अपनी मानसिकता भी सक्रिय रही है । वीरेन्द्र मिश्र, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', घनश्याम अस्थाना, राजेन्द्र गौतम और योगेन्द्र दत्त शर्मा जहां संस्कृत निष्ठ भाषा का अधिक प्रयोग करते हैं, वहीं शम्भुनाथ सिंह, नईम, ठाकुर प्रसाद सिंह, अनूप अशेष के गीतों में आंचलिकता की महक विद्यमान है । माहेश्वर तिवारी और रमेश 'रंजक' में भाषा की सहजता का आग्रह अधिक है । उमाकान्त मालवीय ने आधुनिक सन्दर्भों से जुड़ी भाषा का व्यंग्यात्मक प्रयोग ज्यादा किया है । वीरेन्द्र मिश्र के काव्य में संगीत की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग जहां कवि की संगीत के प्रति आसक्ति का परिचायक है, वहीं मछुआरों के जीवन से सन्दर्भित शब्दों का प्रयोग कवि के विशेष प्राकृतिक सन्दर्भ से संयुक्त होने का प्रमाण है ।

शम्भुनाथ सिंह ने अपने नवगीतों में युग के वैज्ञानिक बोध को चित्रित करने वाले शब्दों का जो प्रयोग किया है, वह उनकी सजग आधुनिक वृत्ति का ही परिचायक है -

'माथे के ऊपर बहती
रांगे की धारा-सी शाम ।...
जादू के कजरी वन में
भटक गया है कोई यान,
पहियों में उलझ गये हैं
सदियों के विस्तृत मैदान,

चीवर-सा उड़ता आकाश
बलिवेदी धरती नादान !
रेत के घरौंदे सुनसान
लगते हैं नगर और ग्राम ।'[२४]

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के गीत-धूम्रवलयांकित, पंकलीना अरण्यानी, व्रज स्वरलिपियां, घूर्णित रथचक्र, शिलापंखी छन्द, तटवती मत्स्यगंधाएं, अभिमंत्रित स्वयंवरा, कल्पतरु, क्षितिज-पट, वत्स, धूम्रवलित जैसे शब्दों के प्रयोग से अपने संस्कृत-निष्ठ व्यक्तित्व का परिचय देते हैं -

'तुम अभावों
वेदनाओं के धनी
सर्वस्वत्यागी
लोक पीड़ा के पुजारी
ओ महारागी !
विरागी
भीड़ कवियों की जुड़ी पर
क्यों तुम्हीं भाते निराला
लक्ष्य का सन्धान कैसा
दृष्टि पथ पर
था अंधेरा
लगाते रहते निरन्तर
धूम्रवलित
चक्र फेरा
रोशनी में थाम अँगुली
तुम न यदि लाते निराला ।'[२५]

भाषा के प्रति ऐसी ही संस्कृत निष्ठता घनश्याम अस्थाना की रचनाओं में भी देखने को मिलती है । उनके गीतों में रूप-सर्जिका प्रांजल भाषा का जो प्रयोग हुआ है, उसमें निसर्ग परिवेश की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति की अद्‌भुत क्षमता है । इस शैली में छायावादी काव्य के शिल्प का अग्रिम विकास रूपायित हुआ है । नवगीत में बिम्ब-विधान एवम् अप्रस्तुत विधान के लिए प्रकृति का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है और अस्थाना जी के काव्य में तो यह और भी मुखर होकर सामने आया है -

'अनुगुंजित गीतों की
रोमांचित रागिनियाँ
लौट गईं बैठ मंदिर गंधालस तरियों पर ।
पलकों के तट पर झुक
नयनों का नील गगन

सुबक पड़ा, शबनम ज्यों सोयी पंखुरियों पर ।'[२६]

माहेश्वर तिवारी ने चिल्हकती उदासी, उदास पत्तियाँ, गुमसुम सन्देह, मछुआरी किरनें, पीली चिड्डियाँ, नाव के इरादे, छुवन, सबूत, आहट जैसे शब्दों के माध्यम से सहज भाषा के विशिष्ट प्रयोग का उदाहरण प्रस्तुत किया है -

'कुहरे में
सोये हैं पेड़ ।
पत्ता-पत्ता नम है
यह सबूत क्या कम है
लगता है
लिपट कर टहनियों से
बहुत-बहुत
रोये हैं पेड़ ।
जंगल का घर छूटा,
कुछ-कुछ भीतर टूटा
शहरों में
बेघर होकर जीते
सपनों में खोये हैं पेड़ ।'[२७]

साथ ही इनके गीतों में विशेषणों के प्रयोग से एक अर्थवान शिल्प-तन्त्र का निर्माण भी हुआ है । इनके गीतों में हवा, नदी, पेड़, बादल व चिड़ियों के प्रतीकों की अधिकता कवि के व्यक्तित्व को उद्‌घाटित करती है -

'आसपास जंगली हवाएं हैं,
मैं हूँ,
पोर-पोर जलती समिधाएं हैं,
मैं हूँ ।
आड़े-तिरछे लगाव,
बनते जाते स्वभाव
सिर धुनती
होंठ की ऋचाएं हैं,
मैं हूँ ।'[२८]

अनूप अशेष ने मूंज, चिरइया, अम्मा, गौरैया, गिरस्थी, कोदब कुटक, सुगनामन, दूध-भात-दाल, पत्तल, करताल, महुए की गन्ध, ताल-तलैया, खर-पतवार, गोरख-धन्धा जैसे शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग कर अपने आपको ग्राम-संस्कृति का गीतकार होने का प्रमाण दिया है -

'ताल-तलैया लिये जीवनी गंगा
धान-सा पका किसान
गेहूँ-सा
कटा किसान ।
दो खेपों में खपता उड़ता
जैसे खर-पतवार
पूरी बारिश
धूप ओढ़कर
करे नौ-तपा पार
अगला साल आँख में भरकर
घर में
खटा किसान ।'[२९]

नवगीत की भाषा भी नयी कविता की भाषा की तरह ध्वनि-प्रधान है । इसमें लोक के शब्द, लोक-बिम्ब और लोक-प्रतीक अधिक हैं । नवगीत में मिथक अपेक्षतया कम हैं । यहां क्रियापदों से अधिक विशेषण हैं, इसलिए इन्द्रिय-संवेदनों को व्यक्त करने में इसकी भाषा बहुत सफल है । सहज भाषा की कसी हुई बुनावट में दूसरी पीढ़ी के गीतकार अधिक सफल हैं । प्रतीक और मुहावरे भाषा को संकेत से भर देते हैं । संज्ञापदों के प्रयोग का विश्लेषण किया जाय तो नयी कविता से कम नयी वस्तुओं का परिचय नवगीत ने नहीं कराया है । नवगीत का वस्तुबोध नयी कविता से कम नहीं है। जिन रचनाकारों की भाषा व्यंजक नहीं थी, वे अधिक नहीं चल पाये ।

नवगीत की भाषा सामान्यतः एक रचनात्मक ऊर्जा से दीप्त है । डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने नवगीत के भाषागत वैशिष्ट्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है - ''नवगीत की भाषिक संरचना अपनी सहजता, सुबोधता, अकृत्रिमता और लोकोन्मुखता के कारण नयी कविता की अभिजात संस्कारों वाली भाषा तथा पारम्परिक गीतों की गलदश्रु भावुकता वाली काव्य-भाषा से नितान्त भिन्न और विशिष्ट है । वह लोकाश्रित भाषा है जिसमें आंचलिक बोलियों के शब्दों एवम् मुहावरों का निःसंकोच प्रयोग हुआ है । किन्तु लोक-भाषा से जुड़ी होकर भी अर्थवत्ता की अनन्त सम्भावनाओं से युक्त है ।''[३०]

नवगीत की भाषा में विद्यमान देशज उक्तियाँ नवगीत के कथन को स्वाभाविक और अनौपचारिक बनाती हैं । लोक-भाषा का पुट पाठक या श्रोता से आत्मीय संवाद स्थापित कर उससे बतियाता हुआ अपना गहरा प्रभाव उसपर छोड़ता है । नवगीत के देशज रंग ने उसे खड़ी बोली के ठेठपन से बचाकर कोमलता व सहज लोच के गुणों से अभिसिक्त किया है । इसका आशय यह हरगिज नहीं कि, नवगीत की भाषिक संरचना आंचलिक शब्दावलियों या फिर विभिन्न बोलियों से हुई है । बल्कि वहां परिनिष्ठित खड़ी बोली में आंचलिक शब्द-विन्यास अथवा बोली का प्रयोग है । यह प्रयोग सचेष्ट और श्रमसाध्य भी नहीं है । ऐसा होने पर नवगीत में कृत्रिम अभिव्यक्ति का खोट आ जाता और उसमें प्रयुक्त आंचलिक शब्दावली मात्र भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन का आधार बनती । वस्तुतः नवगीत में बोलियों की साझेदारी

कुछ इस सहजता से हुई है कि सम्पूर्ण शब्द-विन्यास कथ्य की स्वाभावोक्ति पा जाता है । निःसन्देह, सहज, स्वाभाविक तथा दैनिक जीवन में प्रयुक्त शब्दावली और कहने का ढंग जितना देशीय संस्कारों से युक्त होगा, उतना ही वह सजीव, प्रभावकारी व मर्मस्पर्शी होगा ।

नवगीत में छानी-छप्पर, चूल्हा-चक्की, खर-पतवार, अगवारे-पिछवारे, मड़ई, खपरैल, खटिया-मचिया, देहरी-द्वारे, भिनसार, चिकोटी, अलगनी, ढिबरी, अबेर, चिरौरी, चुनमुन, पोखर, ताल आदि लोक शब्दावली के बहुविध प्रयोग में ही उसके लोक-भाषा सम्पृक्त सौन्दर्य को नहीं समझा जा सकता, बल्कि लोकोक्तियों, मुहावरों और कथन के लोक-विन्यास नवगीत को लोक-भंगिमा प्रदान करते हैं । इसलिए कई बार आंचलिक शब्दावली का अत्यल्प प्रयोग होने के बावजूद भी कथन-शैली के कारण लोक-भंगिमा का स्वरूप दर्शनीय होता है -

'भीलों ने बाँट लिए वन !
राजा को खबर तक नहीं !
पाप चढ़ा राजा के सिर
दूध की नदी हुई ज़हर
गांव, नगर धूप की तरह
फैल गई यह नई खबर
रानी हो गई बदचलन
राजा को खबर तक नहीं !
एक रात काल-देवता
परजा को स्वप्न दे गये
राजमहल खण्डहर हुआ
छत्रमुकुट चोर ले गये
सिंहासन का हुआ हरन
राजा को खबर तक नहीं !'[३१]

श्रीकृष्ण तिवारी के इस गीत में 'पोखर' और 'परजा' के अतिरिक्त शेष शब्द-योजना परिनिष्ठित खड़ी बोली की है । फिर भी कथन की लोकोक्ति के कारण यह नवगीत की भाषागत लोक-भंगिमा का अच्छा उदाहरण है । समग्र रचना ग्राम्यांचलों की जुड़ने वाली चौपालों में सभासदों के परस्पर बातचीत एवम् रहस्योद्घाटन की मुद्रा में है । इस गीत में सामन्ती व्यवस्था की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवम् अन्तर्विरोधों के उजागर होने तथा समूची भ्रष्ट व्यवस्था के विनष्ट होने की सूचना में उतना आकर्षण नहीं है जितना पूरी बात को कथा के अन्दाज़ में लोक-कहावतों की शक्ल में ढालकर कहने में है। इस लोक-भंगिमा के कारण शब्दों का ध्वन्यार्थ फैल गया है । रचना की ध्वन्यार्थ-लहर काल-सीमा का अतिक्रमण कर समकालीन व्यवस्था के छोरों को स्पर्श करती है ।

आज का गीतकार वर्तमान परिस्थितियों से सीधे वार्तालाप की स्थिति में है । यह वार्तालाप अधिक पैने और साफ-सुथरे भाषिक बिम्बों में हो रहा है । प्रतीकात्मक अन्वति के स्थान पर बिम्बों

में स्पष्ट एवम् स्थूल चित्रमयता अधिक दिखाई देती है । भाषा की नयी अभिव्यंजनात्मक मुद्राएं उभरी हैं । भाषिक गठन में जो एक असहज तनाव पीछे के गीतों में दिखाई दिया था, वह अब नहीं रह गया है । इधर के गीतों में भाषिक प्रयोग अधिक सहज एवम् मुहावरेदार हुआ है । लोकजीवन से लिये गये मुहावरे और कहावतें कथ्य को सजीव और सहज सम्प्रेषणीय बनाते हैं । इनसे नवगीत को प्रतीक, बिम्ब और अन्य उपकरणों की ताजगी मिलती है । नवगीतकारों ने इन उपकरणों को इस तरह संजोया कि वे रचना के अर्द्धवृत्त को सार्थक विस्तार दे सकें । इस सन्दर्भ में राहुल सांस्कृत्यायन ने ठीक ही कहा है - "वस्तुतः भाषा निर्जीव, यांत्रिक तौर से या सीधे तर्जुमा वाले शब्दों के द्वारा हमारे भावों को प्रकट करने में समर्थ नहीं होती, ... भावों को ये वाक्य ज्यादा व्यक्त कर सकते हैं, जो अपने शब्दार्थों से दूर तक ध्वनित करते हों । यह सामर्थ्य भाषा में तभी आती है जब उसमे निर्जीव शब्दावलियों की जगह सजीव मुहावरे वाले वाक्य लाये जायें ।"[३२]

भाषा की दृष्टि से कुछ उदाहरणों के माध्यम से यहां मैं मुहावरों के प्रयोग की बात स्पष्ट करना चाहूँगा । नईम ऐसे नवगीत-हस्ताक्षर हैं, जिन्होने नवगीत की भाषा को मुहावरेदार बनाने में संभवतः सर्वाधिक योगदान दिया है । उनके गीतों में अनुभूति इसी कारण इतनी सहज अभिव्यक्ति पा सकी है-

'सांझ हैं, सकारे हैं
अंधों की लाठी ये
जन्म के सहारे हैं
जुग-जुग सदियों से हरकारे हैं काल के !
आने पर राम-राम
जाते सूरज को भी
करते हैं जन सलाम
लैम्पपोष्ट से अब भी गलियों के, चाल के ।'[३३]

या फिर -

'शाम वाली डाक से खत
आज आया प्यार का ।
यह सुबह, वह शाम
कटते कट गये बीसों बरस
आज अपने आप पर
आया मुझे बेहद तरस
क्या कभी होगा हरा फिर
ठूंठ यह कचनार का ?'[३४]

यश मालवीय की निम्न नवगीत-पंक्तियों में मुहावरों का सुन्दर सार्थक प्रयोग हुआ है -

"बर्फ का साम्राज्य फैला है
रास्ता कोई नहीं है
यह व्यवस्था,
दूध की धोयी नहीं है
कांपते हैं होंठ
कुहरा कांपता है
एक सन्नाटा,
दिशाएं नापता है
कौन सी है आस,
जो खोई नहीं है ?"[३५]

किसन सरोज ने भी अपने नवगीतों में मुहावरों और लोकोक्तियों को यथासंभव स्थान दिया है। मुहावरों के प्रयोग से उनके गीत अत्यधिक सुन्दर एवम् संवेदनशील बन पड़े हैं। यथा -

'जंगलों का दुख, तटों की त्रासदी
भूल, सुख से सो गई कोई नदी
थक गई लड़ती हवाओं से-अभागी नाव,
और झीने पाल-सा हिलता रहा मन
तुम गये क्या, जग हुआ अन्धा कुआँ
रेल छूटी, रह गया केवल धुआँ
गुनगुनाते हम भरी आँखों फिरे सब रात,
हाथ के माल-सा हिलता रहा मन।'[३६]

डॉ. प्रभा सिन्धु की मुहावरेदार भाषा उनके गीतों में एक उमंग एवम् उत्साह भरी संवेदना का संचार करती है -

'मूक रही अधरों की झीलें !
घना हुआ
पेड़ों पर पतझर
ऊंचा उठा
बबूलों का स्वर
उतरी नील गगन से चीलें !
नदियाँ अब
उस ओर मुड़ी हैं
लौह बस्तियाँ
जहाँ खड़ी हैं
तन पर लिये नुकीली कीलें !'[३७]

डॉ. विष्णु विराट भी ऐसे ही मुहावरेदार भाषा की बानगी अपने गीतों में देते हैं -

'कट रहे तटबन्ध
उन्मादिन नदी के
क्या करोगे ?
आचरण दुर्गन्धते
बन्ध्या सदी के
क्या करोगे ?
कट गए दर्पन
कटे चेहरे लिए हम
कट रही पहिचान, पर
कटती न काली रात
मन घबरा रहा है ।'[३८]

नवगीत के रचना-विधान में भाषा का एक सहज सन्दर्भ उपलब्ध होता है । नवगीत का सीधा सम्बन्ध हिन्दी की विभिन्न लोक बोलियों से है । उत्तर भारत के कई हिस्सों से नवगीतकार निकलकर अन्य प्रान्तों एवम् नगरों में पहुंचे और अपनी बोली की मिठास लेकर अपने-अपने काव्य-जमीन पर सक्रिय हुए । इसलिए नवगीत में लोक बोलियों के मुहावरे को सहजता के साथ तराशा जाता रहा है। उसी सहजता से यहां इन्हें तलाशा भी जा सकता है । लोक-संस्कार, परम्पराएं, लोक-रूचियाँ और लोक रूढ़ियाँ भाषा के इस संस्कार को व्यापक परिवेश प्रदान करती हैं । इसी कारण संस्कृत का एक सामासिक स्वप नवगीत में मिलता है । नवगीतकार ने न केवल शब्दों को ही लोक-बोलियों से ग्रहण किया है बल्कि, वहां के भाषिक संस्कारों, व्याकरणिक स्तर पर क्रियापद रचना, छन्दात्मक विभेद आदि को भी तलाशा जा सकता है । यहाँ तक कि लोकजीवन से प्रभावित शब्दों का इस कदर प्रयोग किया गया है कि, कभी-कभी इन लोक-बोलियों से अलग-थलग पड़े व्यक्ति को इनका मर्म समझना कठिन हो जाता है । बुंदेली अंचल के रचनाकार श्याम सुन्दर दुबे की ये नवगीत-पंक्तियाँ देखें -

'बड़ों की अनारी करे
दर्द सों चिन्हारी
मेह बरसें जलभारी
तऊ प्यासो पपीहरा
पात-पात बूँद झरे
झिल्ली झनकार करे
आधी रात चिहुँक उठे
गाँठ-गाँठ पीरा
खोल संयम की
साँकल पुरवैया हरी

उचट-उचट जाय नींद
अधखुली किबरिया ।'[३९]

इस नवगीत-खण्ड में 'बड़ों ही अनारी', 'सों चिन्हारी', 'तऊ प्यासो', 'चिहुँक', 'उचट-उचट जाये', 'किबरिया' आदि शब्द बुंदेली तो हैं ही, सम्पूर्ण क्रियाबन्द भी यहाँ विद्यमान हैं । 'पतवारों की देह पिरानी', 'गाँव गिरानी', 'फूटे नेह अँखुए' आदि ऐसे ही प्रयोग हैं ।

आंचलिक भाषा-संस्कार यों तो सभी नवगीतकारों का वैशिष्ट्य है, किन्तु ठाकुर प्रसाद सिंह व अनूप अशेष में यह बात विशेष तौर पर देखी जा सकती है । अनूप अशेष के एक नवगीत की ये पंक्तियाँ देखें जिसमें लोक-लय एवम् आंचलिकता की खुशबू आसपास की हवाओं में बिखरती महसूस की जा सकती है -

'धनिया के तवे की आंच बनूँ मैं
आंच बनूँ, रोटी का साँच बनूँ मैं ।
गंगा माई दे दे कुठिला भर गेहूँ
ताल की मछलियों से एक-एक रोहू,
मिट्टी की दोहनी का
खाँच बनूँ मैं ।'[४०]

समकालीन नवगीत का चरित्र मुख्यतः ग्रामीण परिवेशधारी है जिसमें प्रमुख रूप से गाँव एवम् आदिवासियों के जीवन को भारतीय प्रतीकों के माध्यम से चिन्हित और अभिव्यक्त करने की ललक दिखाई देती है । यह मत एक हद तक ही सही है कि, नईम, देवेन्द्र कुमार, ओम प्रभाकर, गुलाब सिंह, अनूप अशेष, माहेश्वर तिवारी आदि ने अवश्य ही लोकजीवन के यथार्थ को सूक्ष्मतम और सघनतम अभिव्यक्ति दी जहाँ भारतीय ग्रामीण जीवन और भारतीय संस्कृति के प्रति गहरा अनुराग दिखाई पड़ता है, किन्तु इन लोगों ने केवल ग्रामीण चेतना को ही स्वर दिया, ऐसा नहीं कहा जा सकता । इनके गीतों में रूढ़ियों, विडम्बनाओं, यातनाओं एवम् संत्रासों के प्रति गहरा विक्षोभ भी दिखायी पड़ता है-

'फूले हुए पलाशों में
जीवन के कथ्य तलाशें
लहू लुहान खड़ी जंगल में
वही पुरानी लाशें
चीरघरों में हत्याओं के
कारण खोज रहे
मांशपेशियों में खरोंच
आँखों में भरी खुमारी
मँहगे कपड़ों के नंगेपन
में ऊँची लाचारी
तालीमों के ये तिलिस्म

गर्दनें दबोच रहे ।'[४१]

अवध की लोक-भाषा से संपृक्त अमरनाथ श्रीवास्तव की निम्न नवगीत पंक्तियाँ मुहावरों का सहारा लेकर जन-सामान्य के दैनिक जीवन से जुड़ी समस्याओं, विसंगतियों एवम् विद्रूपताओं को बखूबी उभारती दिखाई पड़ती हैं -

'मैंने भी ऐसे पड़ोस का होना देखा है
आँख खुली तो दरवाजे पर सोना देखा है
साँप बोलते, खपरैलों पर
पेड़ों पर 'उसवा'
बिसरी चोटें लेकर लौटी
आंगन में पुरवा
रात गये घर की बिल्ली का
रोना देखा है ।'[४२]

लोकोक्ति पूर्ण एवम् मुहावरेदार भाषा के सम्बन्ध में नीलम श्रीवास्तव का यह कथन उल्लेखनीय है - 'मुहावरा और लोकोक्तियाँ लोकानुभव की 'कोड' भाषा हैं । सम्प्रेषण का यह सरल और सबल माध्यम है । लोक-स्मृति में इसका अभिप्राय पूर्व संचित होता है, इसलिए इसके माध्यम से बात को समझना सरल हो जाता है ।'[४३] सोमठाकुर ने मुहावरों का प्रयोग नये सन्दर्भ में अत्यन्त कौशल के साथ किया है । आज की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रीतियों-नीतियों की विसंगतियों का उद्‌घाटन ही उनके गीतों का मुख्य कथ्य है -

'आ गए किस द्वीप में हम
देह पत्थर हो गई ।
सर्प गंधा एक डाकिन
साथ में फिरने लगी ।
नाम लिख आये जहाँ हम
गुनगुनाती खुशबुओं से,
ढह गये वे बुर्ज
कुछ टूटे कंगूरे रह गए ।
बढ़ चले हैं पाँव,
पीछे को बुलाती सीढ़ियों पर
हो गए पूरे कथानक
हम अधूरे रह गए ।'[४४]

गीतकार शीलेन्द्र सिंह की रचनाओं में अनगिनत लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग सहज रूप में दर्शनीय होता है । लोकोक्तियों और मुहावरों के सार्थक एवम् समुचित प्रयोग से उन्होने अपनी गीत-भाषा को एक अलग तरह की शैली दी है । मुहावरों का कमोबेश प्रयोग पहले भी कवियों द्वारा किया

गया है, किन्तु शीलेन्द्र सिंह ने समकालीन अनुभवों और वर्तमान परिदृश्यों के बयान में तमाम मुहावरों का प्रयोग कर नवगीत की भाषा को एक नयी आभा दी है -

'तपती रेत उबलता पानी
नदिया की कितनी मनमानी
चली जा रही धीरे-धीरे
पीर पराई से अनजानी ।
    लहर-लहर में मगर बसे हैं,
    धार-धार रेतीले टीले,
    शार्क मछलियों के तम पर हैं
    उगे हुए कांटे ज़हरीले,
    बंधी हुई किश्तियाँ तटों पर
    दूर तलक फैली वीरानी ।
घाट-घाट विषकुण्ड हुआ है
पाट-पाट भँवरों का नर्तन,
उन्मादित कछुवे उतराये
दहल गया सीपों का तनमन,
इस रेती से उस रेती तक
कण-कण में फैली हैरानी ।'[४५]

देश रंग की शब्दावली से परिपूर्ण रचनाओं को ढूँढना नहीं पड़ेगा, वे किसी भी रचनाकार की सर्जना के अंग हैं । आंचलिक शब्द-परिधान काव्य को प्रत्येक स्तर पर एक नया भाव-संसार देता है । इस सन्दर्भ में गीतकार दिनेश सिंह की निम्न नवगीत-पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

'पहिने बाग बहार ताल झाँके बँसवारी
छिन बदरी, छिन धूप, पात आँखों के पीते
चुप ! चुप ! कहे बयार उमर अपनी सब जीते
टूटा गन्ध सितार, कसे फूलों की क्यारी !
कजली गाये मोर, खड़े सर 'विरिछ' हिलाये
बरगद ताने डोर, हवा में बाँह झुलाये ।'[४६]

इसी तरह देश रंग की शब्दावलियों से सराबोर डॉ. शांति सुमन की इन गीत-पंक्तियों को देखें जिनमें व्यक्तिगत संवेदना को समष्टिगत विस्तार दे पाना अत्यन्त सहज प्रतीत होता है -

'माँ की परछाई-सी लगती
गोरी-दुबली शाम
पिता सरीखे दिन के माथे
चूने लगता घाम

दरवाजे के सांकल
छाप उंगलियों की गठरी
भुनी हुई सूजी की मीठी
गंध लिखी देहरी
याद बहुत आते हैं घर के
परिचय और प्रणाम
उजले-पीले कई-कई
सन्दर्भ सलोने-से
तुतली जिद पर गुस्से लगते
कांच खिलौने के
नूपुर पहन बहन का हंसना
फिरना सारा गाम
कहीं-कहीं दुखती है
घर की छोटी आमदनी
धुआं पहनते चौके
बुनते केवल नागफनी
मिट्टी के प्याले-सी दरकी
उमर हुई गुमनाम ।'[४७]

इस प्रकार नवगीत ने देशी मन के प्रतिबिम्ब को उस समय उजागर किया, जब साहित्य में विदेश-आयातित संस्कार की प्रतिच्छायाएँ खड़ी की जा रही थीं । नवगीत ने भारतीय जन-जीवन के उस छोर को पकड़ा जो साहित्य और समाज में अपनी विशेष अहमियत रखता है । गाँव के किसान-मजदूर ही इस देश की रीढ़ हैं । कथा-साहित्य में इन्हें प्रेमचन्द और प्रेमचन्दोत्तर काल में प्रस्तुत करने का एक लम्बा सिलसिला चला । आंचलिक उपन्यासों में भाषा का देशी संसार और संस्कार आया । लगभग इसी तरह नवगीत में भी भाषा के माध्यम से देशी खांटी मन को ज़ज़्ब करने की कोशिश की गई है । नवगीतकार ने लोक-नागरिक की उछाह, उमंग, क्रोध, प्रेम और संयम आदि जिस भाषा-तर्ज पर प्रस्तुत किये वह असल भारत के गाँव की तस्वीर देते हैं । नवगीत में कथा-तत्व जिन नाटकीय स्थितियों में व्यक्त होता है, उसमें देशी व्यक्ति की सांगोपांग छवि उभरती है ।

नवगीत में 'लोक भाषा' का तात्पर्य ग्राम्यांचल या मात्र आंचलिक शब्द से नहीं है बल्कि जन-साधारण की भाषा से ही है । जन-साधारण गाँवों, कस्बों के अतिरिक्त नगरों, महानगरों में भी रहता है । सड़कों, फैक्ट्रियों व इमारतों में काम करने वाले मजदूर, ऑफिस-क्लर्क और विभिन्न व्यवसायों से जुड़ा मध्यम वर्ग का यथार्थ और अनुभूति अभिजात वर्ग के यथार्थ और अनुभूति जैसी नहीं है। जन-साधारण के संघर्ष और सपने अभिजात वर्ग की आकांक्षाओं से अलग हैं । स्वभावतः इनकी सोच एवम् मनःस्थिति भी भिन्न है । जन-साधारण, चाहे वह कस्बे का हो या महानगर का, नवगीत का वह चरितनायक है । इस कारण उसकी अभिव्यक्ति में भी वही सहजता है ।

नवगीत की भाषा का वैशिष्ट्य उसकी दो टूक अभिव्यक्ति है । कथन में घुमाव और शब्दों का क्लिश्टत्व नहीं है, और न ही लम्बे-लम्बे वाक्यों की संरचना है । छोटे-छोटे वाक्यों अथवा वाक्यांशों में कथ्य का दो फाँक बयान है । यहाँ यह स्मरणीय है कि बोलने और लिखने की एकरूपता में सहजता तो आती है, सपाटता नहीं । सपाटबयानी गद्य की प्रकृति है, किन्तु कालान्तर में यह सपाटबयानी गद्यनुमा कविताओं में भी प्रयुक्त होने लगी । 'नवगीत' देशज शब्दों की अकूत सम्पदा से सम्पन्न होने के कारण अपनी प्रकृति में सहज होते हुए भी सहजता का शिकार नहीं हुआ ।

नवगीत ने अभिव्यक्ति के लिए जिस शब्द-माध्यम को अपनाया, वह भाषा-विन्यास का एक नया लोक है । उसमें तत्सम् शब्दों की उपेक्षा और तद्भव शब्दों से परहेज नहीं है किन्तु इस शब्दावली के ज्यों-के-त्यों सहज स्वीकार करने की अपेक्षा देशी रंग में ढालकर या उसे लोक-संस्कार देकर अपनाने की प्रवृत्ति नवगीत में विद्यमान है । वास्तव में इस विधा में भाषा को देशीपन देने के सार्थक प्रयत्न किये गये हैं । रचनाकार की यह चेष्टा यत्न-साध्य नहीं है, बल्कि नवगीतकार जिस अंचल या 'देश' का है, वहां की जुबान चढ़ी बोली अनायास ही मुखरित होकर अभिव्यक्ति को नयी भंगिमा दे जाती है । आंचलिक शब्दों की महत्ता इस बात में है कि ये शब्द अपने साथ एक पूरा-का-पूरा सन्दर्भ लेकर प्रस्तुत होते हैं । वे सिर्फ सम्प्रेषण का जरिया ही नहीं बनते, अपने परिवेश को लेकर मूर्त होते हैं ।

काव्य में देशी सन्दर्भ लिये आंचलिक शब्द काव्य-शास्त्र की दृष्टि से ग्राम्यत्व-दोष और सामान्य दृष्टि में भदेस माने जाते हैं । किन्तु नवगीत में इनका नियोजन कथ्य को सघन, भेदयुक्त ध्वनि और व्यंज्य-भाव से भर देता है । अनूप अशेष के द्वारा प्रयुक्त चिहराई, गिरस्थी, बछेरू, जरे, चिरइया, भीती, बिरियाँ, झउए, बरेठे, पगुराते, मुंडेरी, आँचर, पखार, भोर, देहरी, दीठ, कुठिला, दोहनी; उमाकान्त मालवीय के गीतों में - गझिन, पोखर, तलैया, बलैया, परदेश, निठुर, बकइयां, घुटुरूवन डोले, छइयां, किलके, गोड़ी, काढ़ै, ठमकत, सोन-चिरइया, परबत, पहुडाकर, खंता-खइयां, लरिकइयां, परछइयां, अंगिया, गदराए, अंगनइयां, गइया, टेरे, तजकर, रंभाती, मइया; माहेश्वर तिवारी के यहां - पसर गई, नस-नस, पुंछी, पिन्हा, सूता-परेता, बित्ता-बित्ता, जुड़ा गए, गोखरू, बतियाना, छरहरी, जया जेता; रमेश रंजक के गीतों में - तुलसी चौरे, वित्ते भर, आदतन, कपाल, जामाई-सा, मंजी, ख्वारी, भोकता; और शंभुनाथ सिंह की रचनाओं में प्रयुक्त खटिया, मचिया, देहरी, द्वारे, नदिया, चिहुंक, डहके, टहके, लहके, टेरना, कजरी, सटी, बुलाहट, पुरवा, लचक, आंज, संख-सिवार, कांदो-कीच, पांतर, धुंवारी, अहेरी, मरजाद, बिछिया, बावरी, पहक, बरज, भोरी, कुठांव आदि शब्दावलियाँ कथ्य में एक विशिष्ट अनुषंगिक अभिप्राय को भी जन्म देती हैं । इस तरह कंइयों रचनाकार ऐसे हैं जिन्होंने अपने आंचलिक लोक जीवन से अनगिनत शब्दों-बोलियों को लेकर नवगीत के बहुमूल्य कलेवर को समृद्ध किया है ।

'भाषा' सम्प्रेषण का माध्यम मात्र नहीं है, बल्कि वह अभिव्यक्ति से पहले व्यक्ति-संवेदन का अंग बनती है और उसकी मनःसंरचना में घुल-मिल जाती है । इसलिए कविता में व्यक्त होने के लिए नयी स्थिति, नया परिवेश, नये विचार अपनी संवेदना प्राप्त करने के लिए प्रचलित काव्य-भाषा को बार-बार टोहते हैं और बहुधा उसे अक्षम पाते हैं । अतएव कवि के लिए दो मार्ग बच रहते हैं - प्रचलित काव्य-भाषा को अपनाए या जन-जीवन की शब्दावली में अपने आपको व्यक्त करे । लोक-भाषा को

काव्य-भाषा बनाकर वर्तने में लोक जीवन से सम्प्रक्ति और जन-संवेदना को प्राप्त करने का अतीव आकर्षण और कला की सार्थकता है । मध्य युग में देव-भाषा संस्कृत के प्रयोग की क्षमता से सम्पन्न तुलसी सम्भवतः जन-भाषा की ओर इसी मन्तव्य से प्रेरित हुए थे । किन्तु जन-भाषा की महत्ता असंदिग्ध होते हुए भी उसमें काव्यात्मकता उत्पन्न करने की चुनौती जटिल है । जन-जीवन में प्रचलित भाषा के रचनात्मक उपयोग का आशय उस शब्दावली की ज्यों-त्यों प्रस्तुति करना नहीं वरन् शब्दों के संस्कार उनकी इयत्ता में पैठकर अनुभव-संस्कार को अभिव्यक्ति देना है । नवगीत में यह भाषा-बोध विशेष उल्लेखनीय है ।

नवगीत के परिपार्श्व में एक ओर जहाँ छायावादी वाक् अभिजात्य अथवा एक चमकदार भाषा थी, वहीं उत्तर छायावादी काव्य, विशेषकर नयी कविता सघन प्रतीकात्मकता के जाल में बुनी जा रही थी । हालांकि छायावाद के विशिष्ट भाषा-संसार और उसकी प्रतिक्रिया में नयी कविता की सपाट और अनेक स्रोतमुखी शब्दावली काव्य-परम्परा में नवीन रूप-विन्यास की सर्जना मानी जा सकती है, किन्तु दोनों का सृजन शब्दजन्य परिस्थितियाँ थीं, परिस्थिति-जन्य शब्द-लोक नहीं । आधुनिक जीवन को व्यक्त करने तथा कविता को आधुनिक बनाने के प्रयास में नयी कविता ने जो खिचड़ी भाषा निर्मित की, उसमें तत्सम एवम् बोलचाल के शब्दों के अतिरिक्त अंग्रेजी शब्दों का भी बेखटक प्रयोग किया गया जटिल बिम्ब और अपरिचित प्रतीक पद्धति अपनायी गई । उर्दू के सरल शब्द ही नहीं, कहीं-कहीं तो अत्यन्त कठिन शब्दों से भी पाठकों या श्रोताओं का पाला पड़ा है । भाषा की यह अव्यवस्था या स्वच्छन्दता नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह, केदारनाथ अग्रवाल तथा धर्मवीर भारती के अतिरिक्त लगभग सभी में दिखाई पड़ती है । नयी कविता की भाषा-संरचना के पीछे प्रमुख सूत्र 'बौद्धिकता' है जो किसी भी नये कवि को उसकी पृथक पहचान नहीं प्रदान करती ।

नवगीत की आत्मीय भाषिकता का सबसे बड़ा आधार कवि की सामूहिक भावाभिव्यक्ति या सामाजिकता है । सामाजिकता की जिस इकाई के वे अंग हैं, उसमें न सिर्फ गहन आस्था है, बल्कि उससे अलग अस्तित्व की कल्पना भी वे नहीं करते । इस समाज प्रचलित भाषा में ही वे स्वयं को ढूंढ़ते और रचते चले जाते हैं । इसीलिए उमाकान्त मालवीय, अनूप अशेष, रमेश रंजक, श्रीकृष्ण तिवारी, शलभ श्री राम सिंह, ओम प्रभाकर, यश मालवीय, दिनेश सिंह, गुलाब सिंह, सोमठाकुर, विष्णु विराट, किसन सरोज, नईम, शीलेन्द्र सिंह व शान्ति सुमन आदि गीतकारों के यहाँ भाषा की आत्मीय संरचना के अतिरिक्त उनको विशिष्ट पहचान देने वाली शब्द-संघटना भी देखी जा सकती है । यह अकारण ही नहीं है कि, उमाकान्त मालवीय के गीतों में परम्परा और संस्कार अनूप अशेष के गीतों में ग्राम्य जीवन और उसके अन्तर्सूत्र, शम्भुनाथ सिंह में इतिहास-बोध, ओम प्रभाकर व रमेश रंजक में आधुनिक जीवन की जटिलताएं, शलभ श्री राम सिंह, विष्णु विराट, दिनेश सिंह व गुलाब सिंह में संघर्षरत व्यक्ति का मूर्त रूप तथा सोम ठाकुर, किसन सरोज, शान्ति 'सुमन' श्री कृष्ण तिवारी, यश मालवीय, नईम और शीलेन्द्र सिंह में ग्राम्य एवं नगरीय परिवेशों में टूटते-जुड़ते आदमी की छटपटाहट एवं आपाधापी की कहानी उभर कर आती है ।

भारतीय मध्यम वर्ग और श्रमरत किसान-मजदूर नवगीत-संवेदना के मूल आधार हैं । गाँव, नगर, कस्बा एवम् महानगरों में रहने वाली पारिवारिक इकाइयाँ, उनका दुःख-दर्द, सुख-उल्लास आदि की अभिव्यक्ति

नवगीत का प्राप्य है । भारतीय अधिसंख्य जन के सपने, उसकी इच्छाएं, यथार्थ, इतिहास आदि आधुनिकता के साथ इसमें गुम्फित हैं । इसलिए नवगीत-काव्य की भाषा उसी जीवन से अंकुरित पल्लवित होती है और काव्य का उपक्रम बनती है । उसमें आंचलिक शब्दावली, जन-सामान्य की भाषा का सृजन करती है । भारतीय काव्य में जन-भाषा का सर्वाधिक रचनात्मक उपयोग अपने श्रेष्ठ रूप में 'नवगीत' में वर्तमान है ।

रमेश रंजक कृत 'गीत विहग उतरा' के प्रारम्भिक नवगीत की निम्न पंक्तियाँ निश्चय ही गौरतलव हैं जिनमें नवगीत की उस भाषा-प्रकृति की लाक्षणिक अभिव्यक्ति होती है, जो व्यापक जन-जीवन में प्रचलित लोक-भाषा से ईजाद की गई है, साथ ही जो परम्परागत काव्य-भाषा के अतिरिक्त समानान्तर काव्य-धारा 'नयी कविता' से भी मूलतः भिन्न है -

'बनवासी शब्दों को
नागरिक बनाकर
रेखाएं खींची अपवाद की
नये-नये अर्थों की
वंश-बेल पाकर
काँप गई धरती अनुवाद की ।'[४९]

इसी प्रकार देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' की निम्न नवगीत-पंक्तियाँ भी कुछ ऐसा ही प्रमाण प्रस्तुत करती हैं -

'हम जीवन के महाकाव्य हैं
केवल छन्द-प्रसंग नहीं हैं ।
कंकड़-पत्थर की धरती है
अपने तो पांवों के नीचे
हम कब कहते बन्धु ! बिछाओ
स्वागत में मखमली गलीचे
रेती पर जो चित्र बनाती
ऐसी रंग-तरंग नहीं है ।[५०]

डॉ. सत्येन्द्र शर्मा संभवतः सत्य ही कहते हैं - 'नवगीत में भाषा की हार्दिकता रचनाकार के व्यक्तित्व के सामाजिक विलयन से जन्मी है । जबकि नयी कविता में 'अहं' कहीं तिरोहित ही नहीं होता, वह सिर चढ़कर बोलता है ।'[५१] नयी कविता में रागात्मक गेयता मरुस्थल में यदा-कदा मिली आर्द्रता की भाँति है, जहां मिलते हैं लम्बे-लम्बे वक्तव्य, उक्ति-वैचित्र्य अथवा उत्तेजक भाषण के अंश। उसकी तुलना में नवगीत में वाणी का संयम् मिलता है । वाणी का संयम रचना को वक्तव्य होने से बचाता है । पाश्चात्य विद्वान-कवि 'गेटे' ने इसी सन्दर्भ में कहा था - 'भाषण मत दो, कलाकार सृजन करो ।'[५२] भावुकता या सिर्फ भावुक उक्तियाँ ही आत्मीय नहीं होतीं । परिवेशजनित यथार्थ का विवेक-बोध और राग का सामञ्जस्य ही भाषा को आत्मीय बनाता है । 'भाषा' रचना का महत्वपूर्ण अवयव है । आद्योपान्त रचना का सम्पूर्ण रचना-कर्म भाषा के माध्यम से ही तो सम्भव होता है ।

इसलिए भाषा ही रचना के विभिन्न पड़ावों का पड़ताल करती है । भाषा की ताकत रचना की ताकत बनती है और रचना की पहचान उसकी भाषिक संरचना से ही प्रारम्भ होती है ।

नवगीत को 'भाषा की नयी सभ्यता' मानते हुए डॉ.विजय बहादुर सिंह लिखते हैं - ''भाषा की यह नयी सभ्यता बुद्धि या प्रयासजन्य नहीं है । वह व्यापक जन-संवेदना और सामाजिक धरातल से प्रादुर्भूत हुई है । काव्य-परम्परा में इसके बीज 'निराला' व विशेषकर पंडित माखन लाल चतुर्वेदी में मिलते हैं जहाँ अभिव्यक्ति या संवेदना को सर्वोपरि मानकर संस्कृत-शब्दों के बीच भी निपट लोक-शब्दावली प्रयुक्त हुई है । और वह पाठक की आत्मा को रस-स्नात कर गई है ।''[५३]

इस प्रकार अब तक के विवेचन और विश्लेषण से स्पष्ट हो चुका है कि नवगीतकारों ने न केवल गांवों की धरती, प्रकृति अथवा निवासियों को अपने गीतों में उतारा, बल्कि लोक और ग्राम-गीतों की धुनों, लयों और भाषा-बोली आदि को भी पूरे उत्साह के साथ ग्रहण कर अपने गीतों को नया कलेवर प्रदान किया । उनमें नये संगीत की सृष्टि की, उन्हें नये सांचे में ढाला । नवगीत-शिल्पी 'भाषा' का चतुर चितेरा है । भाषा के क्षेत्र में उसने नयी शब्दावली का अधिक प्रयोग न कर पुरानी, जर्जर और बासी शब्दावली को अपनी कला द्वारा, इस प्रकार वाक्य-विन्यस्त किया है कि वह अपने 'कथ्य' की अभिव्यक्ति में समर्थ हो, नवीनता से परिपूर्ण हो गई है । नवगीतकारों की भाषा भावानुकूल है । जहां इनकी भाषा में आंचलिकता को साक्षात प्रस्तुत करने का सामर्थ्य है, वहीं नगरीय सन्त्रास को सजीवता के साथ चित्रांकित करने की क्षमता भी । नवगीत-भाषा का सर्वश्रेष्ठ गुण 'वातावरण-निर्माण' है । शब्द-विशेष का इन्हें कोई मोह नहीं, बल्कि अंग्रेजी व उर्दू के अनेक शब्दों का प्रयोग इन्होंने यथासंभव किया है । सर्वत्र जीवित भाषा का प्रयोग कर नवगीतकारों ने अपने भावों का सम्प्रेषण सफलतापूर्वक किया है । उनकी भाषा के विविध रूप - आंचलिक भाषा, तीज-त्योहार, रीति-रिवाजों की संस्कारमयी भाषा, कल्पनामय किन्तु सौन्दर्य-सम्पन्न, संत्रास, आक्रोश एवम् टूटन-घुटन की अभिव्यक्ति युक्त भाषा नवगीत-साहित्य में बखूबी देखी जा सकती है । अतः नवगीत की भाषा, थोड़े से बौखलाये बुद्धि-जीवियों या राजनीतिज्ञों की बेमानी भाषा नहीं है । उसमें एकालाप अथवा आत्म-ग्रस्तता के बदले सामाजिक सन्ताप का स्वर प्रमुख है । भाव एवम् भाषा दोनों दृष्टियों से नवगीतकार की भाषा वैविध्य, विशिष्टताओं से परिपूर्ण है । नवगीतकार अपनी सशक्त और सजग भाषा के माध्यम से ही आधुनिक युग-बोध को अपने गीतों में जीवन्तता के साथ चित्रित करने में सफल रहा है ।

संदर्भ सूचि :-

१. हिन्दी साहित्य कोश - भाग-१, पृष्ठ ४३१
२. वही, पृष्ठ ४३२
३. योगेन्द्र दत्त शर्मा : नवगीत अर्द्धशती, पृष्ठ १८८
४. डॉ. शम्भुनाथ सिंह : नवगीत दशक-२, पृष्ठ १६
५. डॉ. शम्भुनाथ सिंह : नवगीत दशक-१, पृष्ठ १३४
६. भव्य भारती : नवगीत शिखर (१९९९), पृष्ठ १७
७. सोन मछरी मन बसी
८. अविराम चल मधुवन्ती, पृष्ठ ३३
९. नये-पुराने : सितम्बर १९९८ (सं. दिनेश सिंह), पृष्ठ १२९
१०. नये-पुराने, गीत अंक-४, पृष्ठ १३२
११. नवगीत अर्द्धशती, पृष्ठ ४५
१२. नये-पुराने, गीत-अंक-४, पृष्ठ ९६
१३. माहेश्वर तिवारी : गीत-पर्व आया है, पृष्ठ ८३
१४. नीलम श्रीवास्तव : नये-पुराने, सितम्बर १९९८, पृष्ठ १५८
१५. राम अवतार त्यागी : सुर-संकेत (जून १९९७)
१६. नये-पुराने, सितम्बर १९९८, पृष्ठ १२१
१७. माहेश्वर तिवारी : भव्य भारती : नवगीत शिखर (अंक १९९९), पृष्ठ ४३
१८. नवगीत अर्द्धशती, पृष्ठ २३३-२३४
१९. नये-पुराने, सितम्बर १९९८, पृष्ठ ११२
२०. भव्य भारती, नवगीत शिखर (अंक १९९९), पृष्ठ ४१
२१. सुर-संकेत, जून १९९७
२२. कुँअर बेचैन : नये-पुराने, सितम्बर १९९८, पृष्ठ ८२
२३. भव्य भारती : नवगीत शिखर (अंक १९९९), पृष्ठ
२४. नवगीत अर्द्धशती, पृष्ठ २३३
२५. नये-पुराने, गीत अंक-३ (सितम्बर १९९८), पृष्ठ १३२
२६. घनश्याम अस्थाना
२७. नये-पुराने, सितम्बर १९९९ : गीत अंक-४, पृष्ठ १३२
२८. नवगीत अर्द्धशती, पृष्ठ १८५
२९. भव्य भारती : नवगीत शिखर अंक - १९९९, पृठ ३४
३०. नवगीत दशक-२ (भूमिका) पृष्ठ १६

३१. नवगीत दशक-२, पृष्ठ ११४
३२. राहुल सांस्कृत्यायन के श्रेष्ठ निबन्ध (सं. डॉ. कमला सां., डॉ. खेलचन्द आनन्द) पृष्ठ २३५
३३. नये-पुराने (१९९९) गीत अंक-४, पृष्ठ १३०
३४. नवगीत अर्द्धशती, पृष्ठ १३५
३५. भव्य भारती : नवगीत शिखर अंक (१९९९), पृष्ठ २६
३६. वही, पृष्ठ २८
३७. सुर-संकेत (जून १९९७) : सं. कुंअर बेचैन
३८. वागर्थ : सं. प्रभाकर श्रोत्रिय अंक ५३ - सितम्बर १९९९), पृष्ठ २४
३९. शब्दों में सूर्य बिम्ब, पृष्ठ ५
४०. नये-पुराने, गीत अंक-४ (१९९९), पृष्ठ १०९
४१. गुलाब सिंह : नये-पुराने, सितम्बर-१९९८, पृष्ठ १०२
४२. भव्य भारती : नवगीत शिखर (१९९९), पृष्ठ ३५
४३. नये-पुराने, सितम्बर १९९८, पृष्ठ १६३
४४. भव्य भारती : नवगीत शिखर (१९९९), पृष्ठ १९
४५. नये-पुराने, सितम्बर १९९८, पृष्ठ ११२
४६. नया प्रतीक : अंक - सितम्बर १९७७, पृष्ठ ८०
४७. भव्य भारती : नवगीत शिखर-१९९९, पृष्ठ ४४
४८. गीत विहग उतरा, पृष्ठ ९
५०. नये-पुराने, सितम्बर १९९८, पृष्ठ १३४
५१. नवगीत : संवेदना और शिल्प, पृष्ठ २०३
५२. लेखन कला और रचना-कौशल : मैक्सिम गोर्की (अनु. अशरफ अली), पृष्ठ ३३७
५३. रश्मि : नवगीत अंक (सं. गोपी वल्लभ सहाय), पृष्ठ २७